इकाई 20 जाति की आर्थिक और राजनीतिक गतिकी

इकाई की रूपरेखा

20.0 उद्देश्य

20.1 प्रस्तावना

20.2 वर्ण-व्यवस्था की ठेठ आदर्श विशेषताएं

20.3 संस्कृतीकरण और भेद की अवधारणाएं

20.4 वर्ण-व्यवस्था में परिवर्तन और गतिशीलता: आर्थिक और राजनीतिक कारक

20.5 सारांश

20.6 शब्दावली

20.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

20.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

20.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ लेने के बाद आप:

- वर्ण-व्यवस्था का क्या अर्थ है और उसकी ठेठ आदर्श विशेषताएं क्या-क्या हैं, यह समझ जाएंगे;
- संस्कृतीकरण और भेद के जरिए आप उपरोक्त संकल्पना-निर्धारण में आने वाली समस्याओं को जान पाएंगे;
- वर्ण-व्यवस्था में गतिशीलता और परिवर्तन के राजनीतिक और आर्थिक कारकों के बारे में जान पाएंगे; और
- पूर्व-आधुनिककाल और आधुनिक काल दोनों के दौरान वर्ण-व्यवस्था में जो-जो दबलाव आए हैं, उनके बारे में जान पाएंगे।

20.1 प्रस्तावना

यह इकाई आपको मुख्यत: उन परिवर्तनों के बारे में बताएगी जो वर्ण-व्यवस्था में आर्थिक और राजनीतिक शक्तियों के कारण आए हैं। इसके लिए हमने विभिन्न संकल्पनाओं का अर्थ समझाने के साथ-साथ मुख्य समाजशास्त्रीय और नृवैज्ञानिक अध्ययनों का उल्लेख भी किया है। इसे बेहतर ढँग से समझाने के लिए हमने इकाई को तीन मुख्य भागों में बांटा है।

पहला भाग वर्ण-व्यवस्था की ठेठ आदर्श विशेषताओं के बारे में बताता है। दूसरा भाग संस्कृतीकरण और भेद का अर्थ बताता है। इन संकल्पनाओं से हमें वर्ण-व्यवस्था की परिवर्तनशील प्रकृति के बारे में पता चलता है। तीसरा भाग पूर्व आधुनिक-काल और आधुनिक काल में आर्थिक और राजनीतिक शक्तियों के कारण वर्ण-व्यवस्था में जो-जो परिवर्तन आए हैं और उसमें गतिशीलता किस तरह से होती है, इस सबके बारे में बताता है।

20.2 वर्ण-व्यवस्था की ठेठ आदर्श विशेषताएं

जाति की गतिकी को समझने से पहले वर्ण-व्यवस्था की ठेठ आदर्श विशेषताओं को जानना

जरूरी है। इससे हम वर्ण-व्यवस्था में आए तरह-तरह के बदलावों को समझ सकेंगे। भारतीय समाज-शास्त्र या सामाजिक-नृजातिविज्ञान में यह महसूस किया जाता है कि अपने अंतर-संबंधों के जरिए विभिन्न जातियों ने जिस वर्ण-व्यवस्था को जन्म दिया है उसके स्वरूप को समझने का सबसे बढ़िया तरीका यही है कि हम उसकी विभिन्न विशेषताओं को जानें। जी.एस. घुरये ने वर्ण-व्यवस्था की जो विशेषताएं बताई हैं, उन्हें कुछ आपत्तियों के साथ लगभग सभी समाजशास्त्रियों ने स्वीकारा है। घुरये के चित्रण से वर्ण-व्यवस्था की जो तस्वीर उभरती है, उसे हम उसकी ठेठ आदर्श विशेषता मान सकते हैं, जो इस प्रकार हैं:

i) समाज का सखंड विभाजन

वर्ण-व्यवस्था समाज को विभिन्न जाति समूहों में बांटती है, जिसमें प्रत्येक जाति-समूह की अपनी सुविकसित जीवन शैली होती है। जाति समूह की सदस्यता जन्म से तय होती है। व्यक्ति की प्रस्थिति या हैसियत जिस जाति में वह जन्मा है उसकी पारंपरिक महत्ता से तय होती है। जाति वंशागत है।

ii) क्रम-परंपरा

वर्ण-व्यवस्था की यह एक और महत्वपूर्ण विशेषता है। किसी भी जाति का इस क्रम-परंपरा में स्थान विभिन्न कारक तय करते हैं, जैसे: (क) भोजन सामग्री, (ख) अन्य जातियों से भोजन और जल ग्रहण या अस्वीकार करना, (ग) उसके अनुष्ठान, (घ) उसके रीति-रिवाज, (ड.) उसके पारंपरिक विशेषाधिकार और अशक्तताएँ और (च) उसकी उत्पत्ति का मिथक। जो जातियाँ क्रम-परंपरा में ऊपर हैं, उन्हें उन जातियों से ज्यादा पवित्र माना जाता है जो क्रम-परंपरा में नीचे हैं।

द्युमोंत के अनुसार जाति क्रम-परंपरा जिस अकेले विशुद्ध सिद्धांत पर आधारित है, वह पवित्र और अपवित्र में विरोध है। उनका कहना है: "यह विरोध क्रम-परंपरा का आधार है, जो अपवित्र पर पवित्र की श्रेष्ठता का द्योतक है, यही पार्थक्य का आधार है क्योंकि पवित्र और अपवित्र को एक दूसरे से पृथक रखा जाना चाहिए और यही श्रम के विभाजन का आधार है क्योंकि इसी तरह पवित्र और अपवित्र व्यवसायों को भी अलग रखा जाना चाहिए।" द्युमोंत क्रम-परंपरा को वर्ण-व्यवस्था की एक निश्चायक विशेषता मानते हैं क्योंकि यह "ऐसा सिद्धांत है जिसके द्वारा किसी समष्टि के तत्व उस समष्टि के सापेक्ष श्रेणीबद्ध रहते हैं।" उनके अनुसार यह "परिवेशी और परिविष्ट के बीच" संबंध है। "जातियों के 'क' से लेकर 'ज्ञ' तक के रेखीय क्रम" के लिए यही उत्तरदायी है।

iii) खान-पान और सामाजिक संसर्ग पर अंकुश

पवितत्रता की रक्षा के लिए खान-पान और सामाजिक संसर्ग पर विभिन्न किस्म की वर्जनाएं थोपी गई हैं। किस तरह का भोजन और पेय किस जाति से स्वीकार किया जाना चाहिए और किससे नहीं, इस बारे में बड़े ही स्पष्ट और सूक्ष्म नियम बनाए गए हैं।

अभ्यास 1

अपनी नोटबुक में बताइए कि जाति की ठेठ आदर्श विशेषताएं नगर में पाई जा सकती हैं या गांव में। अपने अध्ययन केन्द्र के सहपाठियों से इस पर चर्चा कीजिए।

iv) विभिन्न वर्गों की नागरिक और धार्मिक अशक्तताएं और विशेषाधिकार

वर्ण-व्यवस्था जातियों पर देशिक पार्थक्य थोपती है, जो कि नागरिक विशेषाधिकारों और अशक्त्ताओं का सबसे स्पष्ट चिन्ह है। अछूतों यानी सबसे अपवित्र मानी जाने वाली जातियों को आमतौर पर गाँव के बाहरी छोर पर बसने के लिए विवश किया जाता है।

v) व्यवसाय चुनने की स्वतंत्रता न होना

व्यक्ति कौन सा पेशा चुनेगा इसका निर्धारण भी वर्ण-व्यवस्था ही करती है। इसका यही

मतलब है कि किसी जाति या संबद्ध जातियों के समूह के सदस्यों से एक खास किस्म का व्यवसाय अपनाने की अपेक्षा की जाती है।

vi) **विवाह संबंधी वर्जनाएं**

वर्ण-व्यवस्था जाति से बाहर विवाह करने पर कठोर वर्जनाएं थोपती है। दूसरे शब्दों में एक जाति अपने सदस्यों को जाति से बाहर विवाह करने के लिए मना करती है। इस प्रकार जाति अंतर्विवाही होती है। अंतर्विवाह या सगोत्रविवाह का यह सिद्धांत वर्ण-व्यवस्था की ऐसी प्रबल विशिष्टता है कि अंतर्विवाह को 'वर्ण व्यवस्था का सार' भी कहा जाता है।

20.3 संस्कृतीकरण और भेद की अवधारणाएं

क्रम-परंपरा के सर्व-समावेशी सिद्धांत पर आधारित एक बंद व्यवस्था के रूप में वर्ण-व्यवस्था अपने सदस्यों को गतिशीलता की अनुमति नहीं देती। उस की इस व्याख्या को सभी समाजशास्त्री स्वीकार नहीं करते। कुछ समाजशास्त्रियों और नृजातिविज्ञानियों ने इसको लेकर आपत्तियां की हैं और इस तरह के संकल्पना-निर्धारण की महत्वपूर्ण आलोचना भी की है। इस सिलसिले में एम.एन. श्रीनिवास और दीपांकर गुप्ता ने संस्कृतीकरण और भेद के सिद्धांतों का प्रतिपादन करके जो आलोचना प्रस्तुत की है वह ध्यान देने योग्य है।

i) **संस्कृतीकरण**

प्रसिद्ध समाजशास्त्री एम.एन. श्रीनिवास ने संस्कृतीकरण की संकल्पना का प्रतिपादन वर्ण-व्यवस्था की परिवर्तनशील प्रकृति का विवेचन करने के लिए किया था। श्रीनिवास के अनुसार संस्कृतीकरण वह "प्रक्रिया है जिसके द्वारा 'निम्न' हिन्दू जाति या जनजाति या अन्य समूह अपने रीति-रिवाजों, अनुष्ठानों, विचारधारा और जीवन शैली को ऊंची, द्विज जाति की दिशा में बदलती है। आमतौर पर इस तरह के परिवर्तनों के बाद जाति-क्रम परंपरा में उससे ऊंचे स्थान का दावा किया जाता है जो पारंपरिक रूप से दावेदार जाति को स्थानीय सम्प्रदाय ने दिया होता है।" संस्कृतीकरण की यह काफी व्यापक परिभाषा है। यह सिर्फ ब्राह्मणों तक सीमित नहीं है, न ही यह सिर्फ अनुष्ठानों और धार्मिक प्रथाओं तक सीमित है। इसका अर्थ विचारधाराओं का अनुकरण भी है।

यह वर्ण-व्यवस्था में गतिशीलता या परिवर्तन में भिन्नताओं या विविधताओं की ओर संकेत करता है। अपने कथन को और अधिक प्रभावशाली और अनुभव की दृष्टि से प्रमाणित करने के लिए वे के. एम. पणिकर के ऐतिहासिक अध्ययन का उल्लेख करते हैं। पणिकर का मानना है कि सभी क्षत्रियों का उद्‌गम निम्न जातियों द्वारा सत्ता हथियाने से हुआ है जिसके फलस्वरूप समाज में उन्हें क्षत्रिय की भूमिका और दर्जा मिला।

श्रीनिवास यह भी कहते हैं कि हालांकि सभी अ-प्रबल, खासकर छोटी या अद्विज जातियों के लोग अपना संस्कृतीकरण करना चाहते हैं। मगर इसमें वही सफल हो पाते हैं, जिनकी आर्थिक और राजनीतिक दशा में सुधार हुआ हो।

ii) **भेद**

दीपांकर गुप्ता ने भेद की संकल्पना देकर वर्ण-व्यवस्था की उससे एकदम अलग तस्वीर प्रस्तुत की है जो हमें दयुमोंत की *होमो हायर्किकस* समेत कई ग्रंथों में देखने को मिलती है। गुप्ता दावा करते हैं कि आनुभाविक और तर्क की दृष्टि से यह कहना गलत होगा कि पवित्रता और अपवित्रता के सिद्धांत पर आधारित सिर्फ एक सर्व-समावेशी क्रम-परंपरा ही वर्ण-व्यवस्था को परिभाषित करने वाली विशेषता है। उनके अनुसार: "क्रम-परंपरा की कोई भी अवधारणा यादृच्छिक और कुछ खास जातियों के परिप्रेक्ष्य से मान्य होती है। यह कहना भ्रामक है कि शुद्ध क्रम-परंपरा या तो वह है जिसमें सभी लोग विश्वास करते हैं या वह है जो वर्ण-व्यवस्था में हिस्सा लेने वाले लोगों की स्थिति को वैधता का जामा पहनाती

है। जातियों के बीच पार्थक्य सिर्फ उन्हीं मामलों को लेकर नहीं होता जिन्हें हम पवित्रता और अपवित्रता के बीच विरोध की संज्ञा देते हैं। बल्कि ऐसे भेदों और प्रभेदों का भी उतना ही कठोरता से पालन होता है, पवित्रता और अपवित्रता का जिनसे दूर तक संबंध नहीं होता। उदाहरण के लिए अमोत नामक खेतिहर जाति में गोड़ैया त्योहार का शुभारंभ सूअर की बलि से किया जाता है। इसके बावजूद ब्राह्मण उनके हाथ से पानी पी लेते हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि पवित्रता और अपवित्रता से जुड़े भेदभाव जाति की प्रस्थिति को प्रभावित नहीं करती।

बॉक्स 20.01

गुप्ता तर्क देते हैं कि विभिन्न जातियों की उत्पत्ति कथाएं, जिन्हें हम जाति पुराण के नाम से भी जानते हैं, विभिन्न क्रम-परंपराओं को उचित ठहराती हैं, जिनमें ब्राह्मण को हमेशा शीर्ष स्थान नहीं मिलता। ऊर्ध्व गतिशीलता के लिए संस्कृतीकरण के तरह-तरह के मॉडल देखे जा सकते हैं, जो बहुल जाति क्रम-परंपराओं की उपस्थिति का ठोस संकेत देते हैं। गुप्ता के अनुसार हर उत्पत्ति कथा या जाति कथा "जातियों के बीच विद्यमान 'भेद' का सार बताती है और इसीलिए तर्क की दृष्टि से प्रस्थिति में सभी समान हैं। इस 'भेद' को जन्म देने वाले घटक उदग्र या क्रम-परंपरा के अनुसार क्रमबद्ध न होकर समस्तरीय या पृथक होते हैं। इसलिए 'भेद' की इस व्यवस्था में हमारा सामना एक संतत पैमाने से होने के बजाए प्रछन्न श्रेणियों से होता है। कोई भी जाति यह नहीं मानती कि वह किसी अनूठे तत्व की बनी है, या जो तत्व उसमें है वह किसी से कम पवित्र हैं। हर जाति की अपनी परंपरा, रीति-रिवाज और विचारधारा होती है और इसीलिए वह अन्य जातियों से भेद बरतती है।

गुप्ता का मानना है कि "भेद" और "बहुल समाजिक प्रथाओं का अनुष्ठानीकरण" वर्ण-व्यवस्था का निचोड़ हैं। उनके अनुसार: "वर्ण-व्यवस्था को हम विभेदन के ही एक स्वरूप के बतौर परिभाषित करेंगे, जिसमें व्यवस्था की घटक इकाइयां अंतर्विवाह को ऐसे कथित जैविक भेदों के आधार पर उचित ठहराती है, जो बहुल सामाजिक प्रथाओं के अनुष्ठानीकरण के द्वारा संकेतबद्ध रहते हैं।" बहुल सामाजिक प्रथाओं के अनुष्ठानीकरण से उनका क्या अभिप्राय है इसे स्पष्ट करते हुए गुप्ता कहते हैं: "अनुष्ठानों से हमारा तात्पर्य उन सभी सामाजिक प्रथाओं से है, जिनका पालन इसलिए किया जाता है कि उन्हें सहज रूप से उत्तम माना जाता है।"

20.4 वर्ण-व्यवस्था में परिवर्तन और गतिशीलता: आर्थिक और राजनीतिक कारक

संस्कृतीकरण और भेद की संकल्पनाएं वर्ण-व्यवस्था की परिवर्तनशील प्रकृति को हमारे सामने रखती हैं। असल में भारतीय समाजशास्त्र या सामाजिक नृजातिविज्ञान में वर्ण-व्यवस्था में विभिन्न राजनीतिक और आर्थिक शक्तियों के कारण आए परिवर्तन और गतिशीलता ही अध्ययन का मुख्य विषय रहे हैं। इन अध्ययनों से पता चलता है कि वर्ण-व्यवस्था ने हमेशा ही समाज की राजनीतिक और आर्थिक शक्तियों के साथ परस्पर-क्रिया और प्रतिक्रिया की है। इन अध्ययनों की मुख्य खोजों को व्यवस्थित और स्पष्ट तरीके से रखने के लिए हमने जाति गतिकी के इतिहास को दो भागों में बांटा है: पूर्व आधुनिककाल और आधुनिककाल।

i) पूर्व आधुनिक-काल

भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना होने से पहले के काल में समाज में ऐसे दो सबसे महत्वपूर्ण कारक मौजूद थे, जिनके चलते वर्ण-व्यवस्था में भारी गतिशीलता आई: (1) राजनीतिक प्रणाली में अनिश्चितता और (2) स्थिर जनसांख्यिकीय स्थिति के चलते सीमांत भूमि की सुलभता। श्रीनिवास के अनुसार राजा के किसी भी अधिकारी या किसी इलाके में

दबंग जाति के किसी भी प्रभावशाली परिवार के लिए राजनीतिक रूप से शक्तिशाली बनना और फिर सरदार या राजा का ताज पहनकर क्षत्रिय का दर्जा पाना संभव था। इस तर्क की पुष्टि कई ऐतिहासिक उदाहरणों से हो जाती है। ऐसा ही एक सु-परिचित उदाहरण शिवाजी का है जो एक जागीरदार के पुत्र थे। मुगल शासन अपने उत्कर्ष पर था, जिसमें शिवाजी ने एक अलग मराठा राज्य की स्थापना की थी।

दक्षिण भारत में मराठा, रेड्डी, वेल्लाल, नायर और कूर्ग, बंगाल में पलाश और गुजरात में पट्टीदार जैसी दबंग, प्रभावशाली जातियों को आम तौर पर राजसत्ता हथिया कर क्षत्रिय का दर्जा हासिल करने के अवसर उपलब्ध थे। राजसत्ता पर कब्जा करके जब कभी किसी दबंग जाति के सरदार ने क्षत्रिय का दर्जा पाया, तो बदले में वह भी अन्य लोगों के लिए गतिशीलता का कारक या प्रेरणा स्रोत बना।

बोध प्रश्न 1

1) उस समाजशास्त्री का नाम बताइए जो कहते हैं कि क्रम-परंपरा वर्ण-व्यवस्था को परिभाषित करने वाली विशेषता है।

.....

.....

.....

2) अंतर्विवाह या सगोत्र विवाह क्या वर्ण-व्यवस्था को परिभाषित करने वाली विशेषता है?

.....

.....

.....

3) क्या पवित्रता और अपवित्रता के नियम वर्ण-व्यवस्था के स्वरूप को तय करते हैं?

.....

.....

.....

4) क्या किसी व्यक्ति की आर्थिक-स्थिति क्रम-परंपरा में उसकी स्थिति को तय करती है?

.....

.....

.....

5) वर्ण-व्यवस्था की ठेठ आदर्श विशेषताएं क्या हैं।

.....

.....

.....

.....

.....

राजनीतिक व्यवस्था में व्याप्त अनिश्चितता के कारण राजा को किसी महत्वपूर्ण संस्कार को अंजाम देने के लिए ब्राह्मणों की कमी महसूस होने पर वह निम्न श्रेणी की जाति को

ब्राह्मणों का दर्जा दे सकता था। इसके अलावा वह पुरस्कार या दंड के रूप में जातियों का दर्जा घटा या बढ़ा भी सकता था।

पूर्व-आधुनिक काल में वर्ण-व्यवस्था में गतिशीलता का दूसरा स्रोत सीमांत भूमि की सुलभता थी, जिसे जोता जा सकता था। इस तरह की भूमि सभी जगह हमेशा उपलब्ध थी। बर्टन स्टीन के अनुसार इस कारक के चलते नई बस्तियों के साथ-साथ नए आंचलिक समाजों की स्थापना संभव हुई, जिसने कई परिवारों को अपनी जाति प्रस्थिति को बदलने में सहायता की। इसके अलावा तमिल वेल्लाल जैसी अनेक कृषक जातियों में इस देशिक गतिशीलता से उत्पन्न हुए तरह-तरह के उप-विभाजन भी देखने को मिलते हैं।

ii) आधुनिक काल

ब्रिटिश शासन की स्थापना से भारत में आधुनिक युग का सूत्रपात हुआ। इस काल में वर्ण-व्यवस्था में गतिशीलता के वे सभी स्रोत लुप्त हो गए जिनका उल्लेख हमने ऊपर किया है। उनकी जगह नए स्रोतों ने ले ली। ब्रिटिश शासन ने कुछ खास नई आर्थिक और राजनीतिक नीतियां चलाकर आधुनिकीकरण और पाश्चात्यीकरण की प्रक्रिया शुरू की। इस प्रक्रिया ने सामाजिक संरचना पर गहरा प्रभाव डाला और कुछ हद तक इसमें ढांचागत बदलाव आए। इसके फलस्वरूप वर्ण-व्यवस्था में भी कुछ महत्वपूर्ण बदलाव आए, जिसमें इसने नए ढांचे और प्रकार्य जोड़े। अंग्रेजों ने जो सबसे उल्लेखनीय और सार्थक आर्थिक और राजनीतिक नीतियां चलाई थीं, श्रीनिवास के अनुसार वे इस प्रकार हैं: (1) समूचे उप-महाद्वीप में एक अकेली राजनीतिक भूमिका की स्थापना, (2) औपचारिक नौकरशाही और सैन्य संगठनों का आरंभ, (3) भूमि सर्वेक्षण और बंदोबस्ती कार्य, (4) पट्टेदारी व्यवस्था में सुधार, (5) भूमि का निजी स्वामित्व, जिससे भूमि को खरीदना-बेचना सहज हुआ, (6) कस्बों और नगरों में नए आर्थिक अवसर उपलब्ध करना, (7) कानून के सामने सभी नागरिकों को समानता के सिद्धांत को लागू करना, (8) सभी को उचित न्यायिक प्रक्रिया के बिना दिए जाने वाले कारावास से बचने का अधिकार, (9) अपने धर्म और संस्कृति को मानने और उसके प्रचार की स्वतंत्रता, (10) सती प्रथा, नर बलि और दासता का अवैध बनाना।

बॉक्स 20.02

स्वतंत्र भारत ने भी आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक सांस्कृतिक ढांचे को लोकतांत्रिक और आधुनिक बनाने के लिए तरह-तरह की नई राजनीतिक और आर्थिक नीतियां शुरू कीं। इन नीतियों का लक्ष्य समाज का सर्वांगीण विकास करना था। जैसे औद्योगिक और नगर विकास, कृषि विकास, भूमि सुधार, मानव संसाधन विकास, सामुदायिक विकास के साथ अस्पृश्यता, सती, नर और पशु बलि, बुतपरस्ती, कर्मकांडवाद, बहुदेववाद, बहु-पत्नीत्व आदि कुप्रथाओं का उन्मूलन, बाल विवाह पर प्रतिबंध और विधवा-विवाह को प्रोत्साहन इन नीतियों ने अंग्रेजों के काल में शुरू हुई आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को तेज किया और उसमें नए आयाम जोड़े। फलस्वरूप वर्ण-व्यवस्था में परिवर्तन और गतिशीलता को भी तेजी मिली।

iii) जाति और व्यवस्था में असंबद्धता

वर्ण-व्यवस्था में आने वाला सबसे उल्लेखनीय परिवर्तन जाति और व्यवसाय में संबंध का टूटना है। यह परिवर्तन गांवों से ज्यादा कस्बों और कस्बों से ज्यादा शहरों में आया है। औद्योगिकीकरण और आधुनिकीकरण के फलस्वरूप कई प्रकार के नए व्यवसाय पैदा हुए हैं, जिन्हें जाति-मुक्त कहा जा सकता है। आज ऊंची जाति के लोग ऐसे काम-धंधों में लगे देखे जा सकते हैं जो पारंपरिक रूप से उनके लिए निषिद्ध थे। उदाहरण के लिए ब्राह्मणों को हम जूते के कारखानों में काम करता देख सकते हैं। इसी प्रकार हरिजन भी प्रशासनिक और शिक्षण का कार्य कर रहे हैं। जाति और व्यवसाय के बीच यह असंबद्धता इस सीमा तक बढ़ गई है कि जाति को हम व्यवसाय विशेष के साथ उसके संबंध के आधार पर परिभाषित नहीं कर सकते।

iv) जजमानी प्रथा का बिखराव

वर्ण-व्यवस्था में आए इसी परिवर्तन से जजमानी प्रथा का विखंडन भी जुड़ा है। यह परिघटना वर्ण-व्यवस्था में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन को दर्शाती है क्योंकि जैसाकि कोलेंडा कहते हैं कि पवित्रता और दूषण व क्रम-परंपरा ये सभी जजमानी प्रथा का ही हिस्सा हैं। जजमानी प्रथा तीन श्रेणी के लोगों को लेकर बनी है जो अलग-अलग जातियों के होते हैं। ये श्रेणियां क्रमशः जजमान, कमीन और पुरोहित हैं। कमीन और पुरोहित जजमान को सेवा प्रदान करते हैं, मगर जो सेवाएं वे जजमान को देते हैं वे एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न होती हैं। पुरोहित जजमान के लिए कर्मकांड और देवताओं की पूजा-अर्चना का काम करता है। कमीन जजमान के लिए हाथ से किए जाने वाले काम करता है जैसे उसके कपड़े धोना, दाड़ी-बाल बनाना इत्यादि। इस सेवा के बदले में पुरोहित को तो जजमान नकद और उपहार के रूप में पारिश्रमिक देता है मगर कमीन को वह सिर्फ वस्तुओं के रूप में सालाना पारिश्रमिक देता है जिसे वही तय करता है। जजमान सभी जातियों के हो सकते हैं, लेकिन कमीन कुछ खास जातियों के ही होते हैं। पुरोहित ब्राह्मण ही होते हैं।

जजमानी प्रथा को कई कारणों से टूटते देखा जा रहा है। सबसे पहला कारण यह है कि कमीन और पुरोहित जातियों के परिवार अपने पारंपरिक जातिगत व्यवसाय को कम-प्रतिष्ठित या प्रतिष्ठाहीन और आर्थिक दृष्टि से अलाभकर मानते हैं इसलिए वे इसे अवसर पाते ही छोड़ देते हैं। फिर सभी ब्राह्मण परिवार पुरोहित नहीं होते, न ही सभी कमीन परिवार कमीन होते हैं। ऐसे जजमान परिवारों की भी कमी नहीं है जो अब कमीनों की सेवा नहीं लेते। इसके अलावा कमीनों की सेवा लेने के मामलो में भी बड़ी भारी भिन्नता नजर आती है। दूसरा कारण यह है कि श्रम का विभाजन अब जाति के आधार पर नहीं होता। निम्न कमीन जातियों के लोग अब ऐसे व्यवसाय अपनाने लगे हैं जिन्हें परंपरागत रूप से ऊची द्विज जातियां ही करती थीं। इसी तरह ऊंची जाति के लोग छोटी जातियों के पेशों को अपना रहे हैं। ऐसे अ-ब्राह्मण परिवार भी देखने में आते हैं जो अब पुरोहित का काम करते हैं। यह परिघटना उन अंचलों में अधिक स्पष्ट नजर जाती है जहां ब्राह्मण-विरोधी आंदोलन हुए हैं।

इन सब परिवर्तनों के कारण जजमानी प्रथा जातियों के बीच उस खास किस्म के संबंध को नहीं दर्शाती है। इनमें से कुछ परिवार श्रम खरीदते हैं तो कुछ श्रम बेचते हैं। सो उनके बीच अब शुद्धतः आर्थिक संबंध रह गया है। इस प्रकार अगर हम यह कहें कि जजमानी प्रथा किसी न किसी रूप में आज भी जिंदा है, तो इतनी बात तो निश्चित है कि जजमानी प्रथा में जाति अब मुख्य घटक नहीं रही।

v) पवित्रता और दूषण के नियमों का कमजोर पड़ना

जाति और व्यवसाय के बीच बढ़ता विलगाव और उसके साथ चल रही जजमानी प्रथा के बिखराव की प्रक्रिया के साथ पवित्रता और दूषण के नियम भी कमजोर पड़ते चले गए हैं। यह देखने में आता है कि विभिन्न जातियों के लोग अपना व्यवसाय चुनते समय और अपने सहकर्मियों के साथ व्यवहार करते समय शुचिता और दूषण के नियमों का पालन नहीं करते। इस मामले में उनकी सबसे मुख्य प्राथमिकता व्यवसाय से होने वाला लाभ होता है। जाति के लिए अब यह संभव नहीं रहा कि वह किसी व्यक्ति को शालीन जीवन जीने के लिए आवश्यक बुनियादी जरूरतों (जैसे घर का आकार, बनावट व उसकी दशा, वेशभूषा, जीवनशैली इत्यादि) से इस आधार पर वंचित करे कि उसका जन्म अमुक जाति में हुआ है। सार्वजनिक लोकाचार से छुआछूत का मिटना भी शुचिता और दूषण के नियमों के निरंतर कमजोर पड़ते शिकंजे की ओर संकेत करता है।

vi) पारंपरिक अंतरजातीय सत्ताधिकार संबंधों में बिखराव

वर्ण-व्यवस्था को बनाए रखने में सबसे महत्वपूर्ण कारक एक जाति का दूसरी जाति पर

वर्चस्व है। परंपरागत रूप से आर्थिक और राजनीतिक प्रभुत्व आनुष्ठानिक प्रभुत्व के साथ-साथ चलता था। प्रबल जातियों के उत्पीड़न के शिकार लोगों को अन्य प्रबल जातियों के परिवार शरण दिया करते थे। मगर वर्ण-व्यवस्था का यह संरचनात्मक विन्यास इस कदर बदल गया है कि यह अब उसे परिभाषित करने वाली विशेषता नहीं रही। ब्रिटिश शासन की स्थापना से यह प्रक्रिया आरंभ हुई। योगेन्द्र सिंह लिखते हैं: "ऊंची-प्रबल जातियों के खिलाफ निम्न-दबी जातियों के विद्रोह के कई उदाहरण मिलते हैं। उदाहरण के लिए, पूर्वी उत्तर प्रदेश के चानूखेड़ा गांव की छोटी (चमार और कहार) जातियों ने क्षत्रियों के खिलाफ बेहतर मजदूरी और कांग्रेस द्वारा चलाए जा रहे स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लेने के लिए आंदोलन किया थां। शुरुआती विरोध के बाद क्षत्रियों को अंततोगत्वा उनकी मांग माननी पड़ी।" इसी प्रकार बर्नाड एस. कोहन माधोपुर गांव की निम्न जाति (कमार) द्वारा क्षत्रियों के वर्चस्व को चुनौती देने का उदाहरण देते हैं।

उड़ीसा के खोंडामल स्थित बीसीपाड़ा नामक गांव के अध्ययन में एफ.जी. बेली विभिन्न जातियों के शक्ति संबंधों में ब्रिटिश शासन के फलस्वरूप आए संरचनात्मक बदलाव का एक उत्कृष्ट उदाहरण रखते हैं। वह बताते हैं कि चमड़े और शराब का व्यापार करके अछूत बोआड जाति के लोगों ने ऊंचे और दबंग क्षत्रियों के बराबर भूमि खरीद ली। इसी प्रकार गंजम सुरा-निर्माताओं ने सिर्फ शराब बेचकर गांव में अन्य सभी जातियों से अधिक जमीन खरीद ली। इस आर्थिक बदलाव से गांव के राजनीतिक ढांचे में ऐसे बदलाव आए, जिन्होंने अंतरजातीय शक्ति संबंध के संतुलन को ही पलट दिया।

अभ्यास 2

जाति की राजनैतिक और आर्थिक गतिकी के बारे में विभिन्न लोगों के साथ चर्चा कीजिए। अपनी नोटबुक में चर्चा की मुख्य बातें नोट कर लीजिए।

स्वतंत्रता के पश्चात जातियों के शक्ति प्रारूप में हो रहे परिवर्तन में तेजी आई। सेनापुर गांव के अध्ययन में विलियम एल. रो ने कहा है: "पूर्व में क्षत्रिय जमींदारों का आर्थिक और राजनीतिक रूप से सर्व-शक्तिमान एक छोटा सा समूह पूरे समाज को चलाता था। पर अब जमींदार और काश्तकार के बीच सामाजिक बंधन टूट जाने से नोनिया (एक छोटी जाति) जैसी बहुसंख्य मगर आर्थिक रूप से सबल जाति समुदाय बेरोकटोक अपने हित साधन के लिए स्वतंत्र महसूस करता है।" किशन गढ़ी गांव के बारे में भी मैककिम मैरियोट परिवर्तन की ऐसी ही प्रक्रिया की बात करते हैं।

अंतरजातीय सत्ताधिकार संबंधों के टूटने से निम्न-पराधीन जातियों में संस्कृतीकरण की जो आकांक्षा या लालसा थी, उसकी जगह अब अपनी ही जाति में आत्म-पहचान की एक नई सम्मानजनक भावना या अधिक समस्तरीय जातिगत बंधुत्व की भावना ने ले ली है। संदर्भ समूह के रूप में ऊंची जाति के स्थान को वर्ण-व्यवस्था के राजनीतिक-आर्थिक पहलुओं को अनुष्ठान या संस्कार से विभेदित करके चुनौती दी गई है। द्रविड़ मुनेत्र कड़गम (डीएमके) या आर्य समाज आंदोलन जैसी चरम स्थितियों में विभेदन की यह प्रक्रिया जाति की विचारधारा को सचेतन और पूरी तरह से ठुकरा कर असीम स्वरूप धारण कर लेती है। जातिगत संगठन, जो अनेक नए कार्यों को अंजाम देते हैं, उनका गठन इस परिघटना का एक स्पष्ट द्योतक है।

vii) जातिगत संगठनों का उदय

जातिगत संगठनों का स्वरूप जाति से कई मायनों में अलग होता है। कायस्थ समाज, क्षत्रिय सभा, तेली संघ, वैश्य महासभा, जाट सभा, कुर्मी सहासभा, कोइरी महासभा व भूमिहार-ब्राह्मण महासभा, ये सब जातिगत संगठनों के उदाहरण हैं। राजनीतिक दलों के रूप में विभिन्न जातियों का उदय भी जातिगत संगठन का उदाहरण है, जैसे महाराष्ट्र में

मराठा और महार जाति, आंध्र प्रदेश में कुम्मा और रेड्डी और कर्नाटक में लिंगायत और वोक्कालिगा।

बोध प्रश्न 2

1) संस्कृतीकरण के सिद्धांत के जनक कौन थे?

.....

.....

.....

2) संस्कृतीकरण के सिद्धांत क्या वर्ण-व्यवस्था की परिवर्तनात्मक प्रकृति को दर्शाता है?

.....

.....

.....

3) यह किसने बताया है कि वर्ण-व्यवस्था को विभेदन के एक स्वरूप के रूप में परिभाषित किया जा सकता है?

.....

.....

.....

4) 'भेद' की व्यवस्था के घटकों को क्या लम्बवत रखा जा सकता है?

.....

.....

.....

जाति संगठनों का मुख्य उद्देश्य अपने सदस्यों के हितों की रक्षा करना होता है, जिसके लिए वे हॉस्टल, अस्पताल, कॉलेज, स्कूल, सहकारिता आवास, बैंकों की स्थापना करते हैं और पत्र-पत्रिकाएं प्रकाशित करते हैं और छात्रवृत्तियां देते हैं। अपनी कार्रवाइयों में राजनीतिक-धार्मिक क्षेत्र में पिछड़े होने का वे दावा करते हैं। मगर वहीं वे सांस्कृतिक या आनुष्ठानिक क्षेत्र में ऊंचा दर्जा दिए जाने की मांग भी करते हैं। स्वतंत्रता के बाद जातिगत संगठनों ने राजनीतिक पैरोकार समूहों का रूप धारण किया। उन्होंने अपने सदस्यों के लिए विभिन्न राजनैतिक दलों से चुनाव लड़ने के लिए टिकट मांगे तो निर्वाचित सदस्यों के लिए मंत्रिमंडल में पद। इसके अलावा इन संगठनों ने विभिन्न आर्थिक गतिविधियों के लिए अनुमति, शिक्षा के क्षेत्र में छूट और विशेषाधिकार, सरकारी नौकरियों में नियुक्ति और इस तरह के अनेक लाभ मांगे।

पैरोकार समूहों के रूप में जातियों का उदय और जातिगत संगठनों की स्थापना ये सभी राजनीति के क्षेत्र में जातियों की बढ़ती सक्रियता के द्योतक हैं। जाति या जातिगत संगठन आज राजनीतिक प्रक्रिया में विशेषकर चुनावों में और सरकारी संस्थाओं में पदों के वितरण में बड़ी अहम और व्यापक भूमिका निभा रहे हैं।

viii) लोकतंत्रीकरण की प्रक्रिया

लोकतंत्रीकरण की प्रक्रिया उन समूहों को राजनीतिक सत्ताधिकार और सक्रियता प्रदान करती है जिनकी संख्या अधिक हो बशर्ते उनकी इस शक्ति को राजनीतिक रूप से संगठित या लामबंद किया जा सके। मगर यह तभी संभव है जब लक्षित समूह की जीवन स्थिति

समरूप हो। इस तरह की स्थिति निम्न या छोटी जातियों में अधिक देखने को मिलती है। बहुजन समाज पार्टी (बसपा), *इंडियन पीपुल्स फ्रंट (आईपीएफ)*, समाजवादी पार्टी (सपा), द्रविड़मुनेत्र कड़गम (डीएमके) जैसे राजनीतिक दल इसके अच्छे उदाहरण हैं, जिनका जनाधारा निम्न जातियों में है। इसके अलावा राजनीतिक प्रक्रिया में अधिक हिस्सेदारी के लिए संख्या में अधिक शक्तिशाली निम्न जातियों के द्वारा ब्राह्मण विरोधी जैसे आंदोलन चलाना जाति के बढ़ते राजनीतिकरण की ओर इशारा करता है।

लोगों में अपनी जाति के प्रत्याक्षी को ही वोट देने की जबर्दस्त प्रवृत्ति भी देखने में आती है। राजनीतिक दल भी इस सचाई को अनदेखा नहीं करते। अगर अन्य परिस्थितयां समान हों तो वे निर्वाचन क्षेत्र में जो जाति संख्या में सबसे बड़ी हो उसी से प्रत्याशी को चुनाव में मैदान में उतारने का भरसक प्रयत्न करते हैं। इसीलिए चुनावों में राजनीतिक दल किसी भी प्रत्याशी के मुकाबले में उसी की जाति के अन्य प्रत्यशी को ही खड़ा करने की नीति अपनाते हैं।

इसके अलावा अन्य जातिगत कारण भी राजनैतिक प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं। उदाहरण के लिए महाराष्ट्र कांग्रेस के एक बड़े धड़े को जब यह लगा कि उसमें ब्राह्मणों का वर्चस्व हो गया है तो उन्होंने उसे तोड़ने के लिए पीजैंट्स एंड वर्कर्स पार्टी में नाम से एक स्वतंत्र राजनीतिक दल खड़ा कर लिया। इसी प्रकार कम्मा जाति के लोगों ने कम्युनिस्ट पार्टी पर अपना नियंत्रण बनाया। इसीलिए साम्यवादियों ने अपने हिंसक आंदोलन के दौरान कम्मा जमींदारों को कोई क्षति नहीं पहुंचने दी।

जाति का राजनीतिकरण इतना हो चुका है कि राजनीतिक रूप से प्रभावशाली बनने के लिए विभिन्न जाति समूह संगठित होकर सामूहिक कार्रवाई करते हैं। वे कभी-कभी संगठित होकर राजनीतिक दल, गुट या पैरोकार समूह का रूप धारण कर लेते हैं, जैसे बसपा, सपा, राष्ट्रीय जनता दल और डीएमके। उधर गुजरात में क्षत्रिय सभा के राजपूतों ने राज्य के सत्ताधिकार ढांचे में अधिक अधिकार अर्जित करने के उद्देश्य से निम्न जाति के कोली लोगों को क्षत्रियों का दर्जा दिया।

इस प्रकार हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि वर्ण-व्यवस्था समाज की आर्थिक और राजनीतिक शक्तियों के साथ हमेशा अन्योन्य-क्रिया और प्रतिक्रिया करती रही है। आधुनिक काल में आर्थिक और राजनीतिक ढांचे और प्रकार्यों में हुए बदलावों ने वर्ण-व्यवस्था की कई चारित्रिक विशेषताओं को खत्म कर दिया है और उनकी जगह नई विशेषताओं और प्रकार्यों ने ले ली है। इस विश्लेषण से जाति या वर्ण-व्यवस्था की जो तस्वीर उभरती है वह दीपांकर गुप्ता की इस अवधारणा के अनुरूप है कि जाति एक प्रछन्न श्रेणी है और वर्ण व्यवस्था *'विभेद'* के सिद्धांत पर आधारित प्रणाली है।

20.5 सारांश

इकाई के पहले भाग में हमने बताया कि जाति-गतिकी को समझने के लिए जरूरी है कि पहले हम वर्ण-व्यवस्था की ठेठ आदर्श विशेषताओं को जान लें। ये विशेषताएं इस प्रकार हैं: (1) समाज का सखंड विभाजन, (2) क्रम-परंपरा, (3) खानपान और सामाजिक संसर्ग पर रोकटोक, (4) नागरिक और धार्मिक अशक्तताएं और विभिन्न वर्गों के विशेषाधिकार, (5) पेशा चुनने की छूट न होना और (6) विवाह संबंधी वर्जनाएं।

दूसरे भाग में हमने बताया कि वर्ण-व्यवस्था की इस अवधारणा को कई विद्वानों ने गलत ठहराया है। इस सिलसिले में एम.एन. श्रीनिवास और दीपांकर गुप्ता की आलोचना सबसे महत्वपूर्ण है। श्रीनिवास के संस्कृतीकरण का सिद्धांत यह स्पष्ट करता है कि वर्ण-व्यवस्था अपरिवर्तनशील नहीं है। स्थिति संबंधी परिवर्तन या गतिशीलता वर्ण-व्यवस्था में हमेशा से रहे हैं। 'विभेद' की संकल्पना के जरिए दीपांकर गुप्ता कहते हैं कि वर्ण-व्यवस्था

क्रम-परंपरा के सिद्धांत पर आधारित न होकर विभेद के सिद्धांत पर आधारित है। जातियां *प्रछन्न* श्रेणियां हैं जिन्हें संतत पैमाने में नहीं रखा जा सकता।

तीसरे भाग में हमने बताया कि वर्ण-व्यवस्था समाज की आर्थिक और राजनीतिक शक्तियों के साथ अन्योन्य-क्रिया करती रही है। पूर्व-आधुनिक काल में यानी ब्रिटिश शासन से पहले वर्ण-व्यवस्था में परिवर्तन लाने वाली दो महत्वपूर्ण शक्तियां रहीः (1) राजनीतिक व्यवस्था में अनिश्चितता और (2) सीमांत भूमि की सुलभता। आधुनिक काल में अंग्रेजों की आर्थिक और राजनीतिक नीतियों ने आधुनिकीकरण की जिस प्रक्रिया का सूत्रपात किया, वह वर्ण-व्यवस्था में महत्वपूर्ण बदलाव लेकर आई। जैसे (1) जाति और व्यवस्था में असंबद्धता, (2) जजमानी प्रथा में बिखराव, (3) पवित्रता और अपवित्रता के सिद्धांत में ह्रास (4) अंतर-जाति शक्ति संबंध में विखंडन, (5) जाति संगठनों का उदय और (6) राजनीतिक क्षेत्र में जाति की बढ़ती सक्रियता या जाति का राजनीतिकरण।

20.6 शब्दावली

विभेद : यह एक संरचना का द्योतक है जिसमें किसी समष्टि के घटक प्रछन्न श्रेणियों की तरह समस्तर में पृथक लगे रहते हैं।

अंतर्विवाह : यह विवाह के नियमों को दर्शाता है, जो व्यक्ति को सिर्फ अपनी (सगोत्रविवाह) जाति या किसी एक जाति समूह विशेष में ही विवाह करने की अनुमति या निर्देश देता है।

क्रम-परंपरा : यह सामाजिक संरचना का द्योतक है जिसमें समष्टि के घटक एक संतत पैमाने पर समष्टि के सापेक्ष लम्ब-रेखीय क्रम में श्रेणीबद्ध रहते हैं।

आदर्श प्रारूप : यह एक सामान्य और शुद्ध या अर्भूत अभिप्राय है, जिसकी रचना आचरण और संस्थाओं के आनुभाविक स्तर पर प्रेक्षपीय पहलुओं पर बल देने से होती है।

आधुनिकीकरण : यह एक भूमंडलीय प्रक्रिया है जिसके माध्यम से पारंपरिक समाजों ने आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों में (स्वतंत्रता, बंधुत्व और समृद्धि) आधुनिकता अर्जित की थी या करते हैं।

संस्कृतीकरण : यह वर्ण-व्यवस्था में परिवर्तन का सूचक है जो उसमें निम्न जातियों द्वारा ऊंची जातियों के रीति-रिवाजों, तौर-तरीकों, संस्कारों, जीवनशैली, विचारधारा इत्यादि का अनुकरण करने से आता है।

20.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

सिंह, योगेन्द्र (1977), *मॉडर्नाइजेशन इन इंडियन ट्रैडीशन*, फरीदाबाद, थॉमसन प्रेस

श्रीनिवास एम. एन. (1982), *इंडियाः सोशल स्ट्रक्चर*, दिल्ली, हिन्दुस्तान पब्लिशिंग कॉरपोरेशन

20.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) लुई द्युमोंत

2) हां

3) हां

4) नहीं

5) i) समाज का सखंड विभाजन

ii) क्रम-परंपरा

iii) खान-पान और सामाजिक संसर्ग पर अंकुश

iv) धार्मिक अशक्तताएं और विभिन्न वर्गों के विशेषाधिकार

v) पेशा चुकने की छूट का न होना

vi) जीवन साथी चुनने पर रोकटोक

बोध प्रश्न 2

1) एम.एन. श्रीनिवास

2) हां

3) दीपांकर गुप्ता

4) नहीं